# सन्त कबीर की जन्मभूमि तथा उनके कुछ मैथिली पद

डा० सुभद्र झा एम. ए., पी. एच-डी , डी. लिट्.

*Reprint from*

Journal of the University of Bihar

Vol II, November 1956

# सन्त कबीर की जन्मभूमि

तथा

# उनके कुछ मैथिली पद

डा० सुभद्र झा, एम. ए., पी. एच-डी., डी. लिट्.

साधारणतया लोग यही मानते हैं कि सन्त कबीरदासजी का जन्म काशी में हुआ था, यद्यपि इसके समर्थन में एक भी विश्वसनीय प्रमाण उपस्थित किया नहीं जाता है। हाँ, इतनी बात अवश्य सत्य है कि उन्होंने जीवन का अधिकांश भाग वहाँ बिताया था, जैसा कि अधोलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है।

"बहुत बरख तप कीया काशी",
"सकल जनम शिवपुरी गँवाया"
"मैं काशी का जुलहा" इत्यादि।

हाँ कबीर की रचनाओं में एक पंक्ति अवश्य मिलती है जिससे आपाततः मालूम होता है कि उनका जन्म तो मगहर में हुआ था तथा जब वे कुछ बड़े हुए तो काशी चले आये।

"पहिले दरसन मगहर पायो
पुनि काशी बसे आई।"

पर हमें तो यह संभव मालूम पड़ता है कि वे मिथिला के मूलनिवासी थे, तथा यहाँ के लोक-व्यवहार तथा प्रचलित धर्म से भलीभाँति परिचित थे। जहाँ मुसलमानों के आक्रमणों से पीड़ित उत्तरीय भारत के अन्य प्रदेशों में ज्ञान तथा भक्ति की धारा बह रही थी, वहाँ मिथिला में स्मार्तों तथा मीमांसकों की प्रबलता थी। सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से कबीरदास के समय में मिथिला की अवस्था दूसरे प्रान्तों की अवस्था से भिन्न थी। संभव है, कबीरदासजी को अन्य प्रान्त के लोगों की दशा का ज्ञान तब ही हो गया जब वे मिथिला में ही रहते थे, एवं बाहरी परिस्थितियों का प्रभाव उनके मन पर इतना न पड़ा कि मैथिलों की शक्ति-पूजा तथा उनके यहाँ प्रचलित कर्मकाण्ड की महत्ता से उनका विश्वास तो उठ ही गया, प्रत्युत इनके प्रति इतनी घृणा इनके मन में हुई कि ये सर्वथा ज्ञान-मार्गी हो गये, तथा अपने को वैष्णव बना डाला। उनके वैष्णव का लक्षण वह नहीं है जो अन्य वैष्णव करते हैं, अर्थात् "विष्णु का भक्त"। इसी प्रकार न कबीरदास के मत से शाक्त का अर्थ है "शक्ति का उपासक"। यदि इतना ही भेद उनके इन शब्दों के अर्थ में रहता तो प्रायः "शाक्तों" के प्रति जिस उग्र रूप में उन्होंने अपनी घृणा व्यक्त की है उस रूप में नहीं करते। उन्होंने तो शाक्त से "मत्स्य-मांस-भोजी", तथा वैष्णव से "शाकभोजी" समझा था। यही अर्थ आज भी मिथिला में "वैष्णव" तथा "शाक्त" पदों का प्रचलित है। दक्षिणदेशीय वैष्णव शाक्तों के घर भोजन नहीं करते हैं, तथा बंगाली वैष्णव खूब मछली खाया करते हैं; तथा घर में शक्तिपूजक मैथिलों में कितने ऐसे हैं जो आज भी मछली-मांस नहीं खाते, तथा भोज आदि के अवसर पर उन्हें वैष्णव कहा जाता है, यद्यपि उनके गले में न तुलसी की माला रहती है और न वे वैष्णवों के समान चन्दन ही करते हैं।

यदि कबीरदास काशी के, अथवा मगहर के रहते तो मत्स्यभोजियों का इस उग्रता
से खण्डन करने का अवसर ही उन्हें नहीं मिलता। परंपरा से काशी में मैथिल भी मत्स्य-
मांस नहीं खाते हैं। उन्होंने मछली खानेवालों को कुत्ते का भाई तक कहा है।

"साकत सुनहा दूनो भाई
एक नींदै एक भौंकत जाई ॥"

मैथिलों की यह चाल है कि जो व्यक्ति मछली नहीं खाता है, उसकी बड़ी निन्दा
करते हैं। संभव है कबीरदासजी ने उनसे परास्त होकर उन्हें इस प्रकार गाली देना आरम्भ
किया था। आज भी यदि किसी मैथिल के यहाँ कोई कण्ठीधारी पहुँच जाता है, तो उसे
लोग चिढ़ाते हैं, अतएव जो व्यक्ति मछली नहीं खाता है वह साधारणतया मैथिलों से दूर
रहना चाहता है।

कबीरदासजी ने कहा है :—

"वैश्नों की छपरी भली ना साकत का बड़ गाँव",
"साषत ब्राभण मति मिलै, वैसनो मिलै चँडाल।
अंक माल दे मेटिये, मानौं मिले गोपाल ॥

काशी तथा मगहर के उत्पन्न सन्त से इस प्रकार की उक्ति संभव नहीं है। निश्चित
ही वे वहाँ जन्मे थे जहाँ के ब्राह्मण मत्स्यभोजी थे, तथा जहाँ मछली नहीं खानेवालों की
निन्दा की जाती थी। क्या भगवान् महावीर के अनुयायी जैनों को छोड़कर किसी
संप्रदाय वालों ने मत्स्यभक्षण का इतना जोरदार खण्डन किया है जितना कबीरदासजी ने
किया था? जहाँ मत्स्यभोजन की प्रथा साधारण नहीं रहेगी वहाँ के किसी भी सन्त
को उसके विरुद्ध में कहने की आवश्यकता नहीं होगी। क्या सूर, तुलसी, मीर, नामदेव
आदि के ग्रन्थ में मत्स्यभक्षण का खण्डन इस प्रकार से मिलता है? यहाँ ज्ञातव्य है
कि भगवान् महावीर मैथिल थे।

दूसरा तर्क हमारा यह है कि कबीरदास ने स्वयं कहा है—

"लोगा तुमही मति के भोरा।
ज्यों पानी पानी में मिलिगो
त्यों दुरिमिल्यो कबीरा ॥
ज्यों मैथिल को सच्चा वास
त्योंहि मरण होय मगहर पास ॥"

इससे स्पष्ट है कि कबीरदास के अन्तकाल में उनके मनमें अपनी जन्मभूमि
मिथिला के लिए ममता आभ्यन्तरिक रूप से वर्तमान थी। मरणकाल में उन्हें केवल तीन
ही प्रान्तों का स्मरण आया—मिथिला, काशी तथा मगहर। एक ओर तो वे मिथिला और
मगहर को एक समान कहते, दूसरी ओर मगहर को काशी के समान समझते।

"बहुत वरख तप किया काशी,
मरन भया मगहर बासी।
काशी-मगहर सम बीचारी।"

यह भी ज्ञातव्य है कि अपने प्रधान शिष्य धर्म्मदासजी को उन्होंने संबोधित कर कहा है।

"सावन भादव बरिसै मेहा
एते सबद हम कह्यौ विदेहा।"

(एतै सब तुम कथ्यौ विदेहा—यह पाठान्तर है)—"सर्वज्ञ सागर"

मेरे जानते विदेह शब्द का अर्थ यहाँ "मैथिल" है, न कि "जीवनमुक्त।" यह पद तब ही कहा गया था जब कबीरदास जी जीवित थे। पर कबीरपन्थी शङ्कर के समान जीवन की अवस्था मुक्त होना संभव नहीं मानते। उनकी आत्मा तो शरीर के छोड़ने पर ही परमात्मा से मिल जाती है।

कबीरदास के मैथिल होने का संकेत हमें उनकी इस पंक्ति से भी मिलती है—

"बोली हमरी पूर्व की, हमें लखा नहिं कोइ,
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय॥"

वे काशी में रहते थे। काशी में रह कर उन्होंने यह कहा। अवश्य ही उनकी भाषा काशी के धुर पूरब (दूर पूर्व) प्रदेश की भाषा थी। अर्थात् भोजपुरी क्षेत्र से भी दूर मिथिला में।

हाँ यहाँ एक शंका यह हो सकती है कि यदि कबीरदासजी का जन्म मिथिला में मानने से उपर उद्धृत

"पहिले दरसन मगहर पायो"

इस पंक्ति से विरोध होगा। इसका समाधान यह हो सकता है, "दरसन मगहर पायो" का अर्थ ज्ञानक प्रत्यक्षीकरण है। अर्थात् उन्हें ज्ञान की उपलब्धि मगहर हुई।

इस प्रकार कबीरदासजी जन्म से मैथिल थे, उन्होंने ज्ञानालोक प्रथमवार मगहर में पाया, तथा उसका अभ्यास काशी में किया। हाँ इतना अवश्य रह जायगा कि उनके मगहर में प्रकाश पाने की घटना अनुसन्धेय रह जायगी।

हम विभिन्न हस्तलिखित सूत्रों से संकलित कबीरदासजी के कुछ मैथिली पद यहाँ उद्धृत करते हैं। इन पदों की भाषा विद्यापति की भाषा से सर्वथा मिलती है जैसा कि सहायिका क्रियाओं के अभाव से स्पष्ट है।

## १. मंगल

हन्सा पुरुस वर साजि चलल दल, पाँच रतन दल माह हे।
आदि अन्त एकहु नहि हुन्हिकर, अनहद सब्द निसान हे॥
अखण्ड मण्डिल घर चौक पुराओल, मारग लिलहट दीप हे।
मेरुदण्ड सिर पुरहर थापल, चाँद सुरुज बरु दीप हे॥
इंगला पिंगला दुहु गंगजमुन वहु, तिरवेन संगम घाट हे।
भौर गुफा के कोहवर थापल, दसमि दुआरिआ ब्रह्मवास हे॥
साहेब कबीर जहाँ रमित रमिआहु, गुरुगमी गुरुगमी जानी हे।
विधि वेवहार एक नहि हुनकहुँ, नामके सिंदुरा लिलार हे॥

### २. मंगल

दुलहिन मनसञे आनँद रहु, निरगुनसञे होएत विआह ।
लगन सुदिन प्रानसञे चाहहु, सबद परेखु टकसाल ॥
गावए पाँच सोहागिन, बिलुखए अलप बएस ।
चन्द्र लगन सिर हे सेँ दुर, जमके मरदहु मान ।
कोहवर वइठहु कामिनि, गुरुमुख कनेआँदान ॥
निरगुन सासुर पाओल, अरपञो दुनो कर जोरी ॥

### ३. सोहर

सतनाम सुखसागर, अधम उधारन हो ।
लेइत नाम तरि जाए, मेटए जम झागर हो ॥
जब रहए जननी के गरभ, तब न सम्हारल हो साधो ।
जिनहि देल तन मन परान, ताही विसराओल हो ॥
छोड़हु कपटकेरि पिरिति, विखए रस तेआगहु हो ।
मातु पिता कुल तेआगिअ, साहेब संग लागहु लो ॥
पहिरहु निरभए केर चीर, कुटुम लजवावहु हो ॥ साधो ॥
हँसि पिआ देल सोहाग, कँत उर लावहु हो ॥
सतनाम गुन गावहु, चित न डोलावहु हो ॥ साधो ॥
कहहिं कबीर सँत भाव, अमर पद पावहु हो ॥

### ४. सोहर

सुतलि रहलिहु भरम निद, विखसञे मातलि हो ।
सतगुरु देलन्हि जगाए, चलहु सुखसागर हो ॥
एक नाम चित दए, अम्रित रस पीबहु हो ।
कहइत सुनइत तरि जाए, छुटत जमझागर हो ॥
एक नाम सुखसागर, प्रेम उजागर हो ।
दआभाव लवलीन, असत जनि बोलहु हो ॥
एह सँसार सेमर को फूल, रुइआ उड़ि जाएत हो ।
जे नर भगति विहून, से पछताओत हो ॥
साहेब कबीर सोहर गाओल, गावि सुनाओल हो ।
हिलि मिलि करु सत संग, उतरु भवसागर हो ॥

### ५. झूम्मड़ि

सुनु सखि सुनु सखि, मतो हमार ।
पाओल हमे सतगुरु, दीनदआल ॥
चरनामिर्त पाएब भरिपूर, आवागमन गएबै मोरि दूर ॥
पाए वहैं प्रवाना पान, अब नहि मोरा जमसञे काम ॥
पाएब प्रसाद उपजब गेआन, अब धरिहञो सतगुरु धेआन ।
सनिञे सबद मन भअउ अधीर, चरनकमल चित राखहु कबीर ॥

## ६. समदाओन

मिलि चलु सखिश्रा दिवस भेल रतिश्रा चित मेल जगसञे उदास ।
पाँच भइश्रा के एक बहिनि दुलहिन निसदिन फिरए उदास ।
सासुर हमरो दुरि बसु साजन नैहर नही मेल वास ॥
लाले लाले डोलिश्रा सबुजी रँग श्रोहरिश्रा लागि गेल बतिसो कहार ।
गोड़ लागु पैत्रा पड़ श्रगिला कहरिश्रा तिल एक डोली बिलमाए ॥
श्राएल समधिश्रा उँठि चलु सजनी जहाँ होए सतवेवहार ।
श्रश्रोन पश्रोन के डोलिश्रा सजनी श्रमर पड़ल श्रोहार ॥
कञोने भैश्रा जएतै संग मोर सखिश्रा कञोने लगश्रोतै पार ।
सरगन भैश्रा जएतै संग मोर सखिश्र निरगुन लगश्रोतइ पार ॥
भश्रोजल नदिश्रा श्रगम बहु सखिश्रा कञोने विधि उतरब पार ॥
नैश्रा हमरो सत्तके साजनि सतगुरु धएल करुश्रार ॥
साहेब कबीर एहो गाश्रोल समदौनिश्राँ सन्तोजन लीबो न विचार ।
श्रपन श्रपन गेँठी सम्हारि बाँधह ऊहाँ नहि पइँचा उधार ॥

## ७. भजन

पाँच सखी मिलि श्रइलिहु हो एक भवन लेल वास ।
श्रपन श्रपन सम श्रपन श्रोलक हो कोई नहि मेल हमार ॥
एहि भश्रोसागर नैहर हो निरगुन सासुर मोर ।
श्रबइत बटिश्रा भुलाएल हो केकरा कहब दुःख रोए ॥
के श्रब निज घर जाएत हो केहि विनु रहल श्रचेत ।
केकरा बस जीव परि गेल हो कञोन मिरगा खा गेल खेत ॥
चित्त दए चेतब कँडहारी हो श्रजोघट लागल नाश्रो ।
लछ चौरासी जीव रिनिश्राहो श्रटकि रहल कँडहार ॥
साहेब कबीरक मंगल हो सबद परेखु टकसार ।
ताहि उपर नहि श्रच्छर हो से गहि उतरहु पार ॥

## ८. भजन

पाँच सखी मिलि श्राइलि हो श्रब खेलि रचना बनाए ।
गुरुक वचन कइसे टारब हो श्रब सत जाएत हमार ॥
खेलइत मञे श्रछलि कदमतर हो इहो तन गेल श्ररसाए ।
श्रावि गेलि बैरि निनिश्राँ हो मोर लेखें दिन भेल राति ॥
गुरु लागि पलँगा बिछाश्रोल हो फुलवा मञे देल छिड़ि श्राए ।
ताहि पर लौटब सतगुरु हो हम धनि बेनिया डोलाए ॥
हिलि लिश्र मिलि लिश्र सखीसब हे —हमहु जाइछी बड़ी दूर ।
हमरा लेश्रोने जाए साहेब कबीर मङ्गल हो शबद परेख टकसार ॥
बहुरि न श्राएब एहि जगमे हो फेरु न मनुख श्रवतार ॥

## ९. भजन

जब हम अछलि आदि कुमारि भाइक जनमल जनमल मेल भतार।
निनिका सञे कएल विआह ओ।
सङ्गहि मञे रसलिहु सङ्गहिमे बसलिहु सङ्गहि कएलि घरुआरिओ ॥
सङ्गहि घुमलिहु देस देसाउर सेहे पुरुख हम नारि ओ।
सापिनि रूप हमें नगरँ समइलिहु डँसलहु चारुहु वेद ओ।
ससुर भैंसुर हमे एक सेजसूतल इ अचरज कहल न जाए ओ ॥
कहए कबीर सुनहु भाइ साधो ई पद अछ निर वासी।
जे केओ एकरा बूझि समझए पहुँचए मूल ठेकानी ॥

## १०. चेतावनी

रामनाम गढ़ अजब बनू, एक मास दुइ मासा मेल।
तानी भरनी बराबर मेल, तीन मास चारि मासा मेल।
पुरइनपत्र थीर होएगेल, पाँचमास छओ मासा मेल।
सतर कोठरी तैआरी मेल, सात मास नओ मासा मेल।
पूरन ब्रह्म बसेरा लेल, कहए कबीर मन मदुआ मेल।
काआपुर नगरी नचाओन गेल ॥

———